

नियमसार, जीव अधिकार । १६-१७वीं गाथा । १५ गाथा हुई ।

माणुस्सा दुवियप्पा कम्ममहीभोगभूमिसंजादा ।

सत्त-विहा णेरइया णादव्वा पुढवि-भेदेण ॥१६॥

चउदह भेदा भणिदा तेरिच्छा सुरगणा चउब्भेदा ।

एदेसिं वित्थारं लोय-विभागेषु णादव्वं ॥१७॥

हैं कर्म-भूमिज, भोग-भूमिज मनुज की दो जातियाँ ।

अरु सप्त पृथ्वीभेद से हैं सप्त नारक राशियाँ ॥१६॥

तिर्यञ्च चौदह भेदवाले, देव चार प्रकार के ।

इन सर्व का विस्तार है, ज्ञातव्य लोकविभाग से ॥१७॥

टीका :— यह, चार गति के स्वरूपनिरूपणरूप कथन है । चार गति के स्वरूप के (निरूपणरूप) कथन है । निरूपण अर्थात् कहनेरूप । मनु की सन्तान वह मनुष्य है, ... मनु है न ? मनु—कुलकर । अन्यमति में आता है, मनुस्मृति ग्रन्थ । यह कुलकर है न ? नीचे (अर्थ) है, देखो ! **भोगभूमि के अन्त में...** यह भोगभूमि होती है न ? जुगलिया । उसके अन्त में जुगलिया पूरे हो, तब ऐसी मनुष्य भूमि में । **कर्मभूमि के आदि में...** जैसे ऋषभदेव भगवान के पहले भोगभूमि का अन्त आ गया और वहाँ से कर्मभूमि की शुरुआत हो गयी ।

ऋषभदेव भगवान से। **होनेवाले कुलकर...** उसमें होनेवाले कुलकर। यद्यपि ऋषभदेव भगवान से पहले भी कुलकर होते हैं। **मनुष्यों को आजीविका के साधन सिखाकर...** उस समय आजीविका के साधन, कल्पवृक्ष सूख गये, कल्पवृक्ष नहीं थे, इसलिए कुलकर आजीविका के साधन सिखाते हैं। ऋषभदेव भगवान भी अन्तिम कुलकर थे।

लालित-पालित करते हैं;... व्यवहार की बात है। राजा स्वयं उस समय कुलकर बुद्धिवाले वे होते हैं। साधारण प्राणी लाखों-करोड़ों, उन्हें दूसरा साधन नहीं होता। जुगलिया थे। कल्पवृक्ष से जीते थे। कल्पवृक्ष समाप्त हो गये। उस समय यह मनुष्य-कुलकर **लालित-पालित करते हैं; इसलिए वे मनुष्यों के पिता समान हैं। कुलकर को मनु कहा जाता है।** लो! यह मनु शब्द पड़ा है सही न! वे सब कुलकर हैं। शास्त्र में तो ऐसा लेख है, कुलकर हैं, वे सब क्षायिक सम्यग्दृष्टि। ऋषभदेव भगवान भी अन्तिम कुलकर हैं। क्षायिक समकृति, तथापि सबको सिखाने का विकल्प होता है। वे लोग अनजान हैं। कैसे पकाना, वासन-बर्तन कुछ नहीं होते। सब अनजाने लोग थे। उन्हें ये सिखाते थे कि ऐसा करना... ऐसा करना... इसलिए उन्हें **मनु की सन्तान...** उनसे प्रवृत्ति चली, इसलिए उन्हें मनुष्य कहा जाता है।

वे दो प्रकार के हैं—कर्मभूमिज और भोगभूमिज। उनमें कर्मभूमिज मनुष्य भी दो प्रकार के हैं—आर्य और म्लेच्छ। यह कर्मभूमि है न। पुण्यक्षेत्र में रहनेवाले, वे आर्य हैं... यह पुण्यक्षेत्र है, इसमें रहनेवाले आर्य हैं। पापक्षेत्र में रहनेवाले, वे म्लेच्छ हैं। आर्यक्षेत्र के अतिरिक्त दूसरे सब पापक्षेत्र हैं। पाँच खण्ड हैं न? अन्तिम म्लेच्छ हैं। भोगभूमिज मनुष्य, आर्य नाम को धारण करते हैं;... समस्त भोगभूमियाँ जो होती हैं न? कल्पवृक्ष से जीवें, वे भी आर्य हैं, वे म्लेच्छ नहीं हैं।

उनमें जघन्य, मध्यम अथवा उत्तम क्षेत्र में रहनेवाले हैं... उनमें तीन प्रकार। एक पल्योपम, दो पल्योपम अथवा तीन पल्योपम की आयुवाले हैं। जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट तीन पल्य आयुष्यवाले होते हैं। लो! देवकुरु, उत्तरकुरु आता है न? वह मनुष्य की बात की है। भोगभूमिज और कर्मभूमिज।

अब नारकी की बात करते हैं। जीव अधिकार है न? जीव का त्रिकाल स्वरूप बताया और उसकी वर्तमान पर्याय में कितने प्रकार होते हैं, वह भी बताते हैं। नीचे नारकी हैं।

रत्नप्रभा,... नारकी का नाम रत्नप्रभा है। शर्कराप्रभा,... कंकर, बालुकाप्रभा,... बालू। पंकप्रभा,... कीचड़ धूमप्रभा,... धुँआ, तमःप्रभा और महातमःप्रभा... सात पृथ्वी के नाम हैं। भगवान ने सात नारकी (नरक पृथ्वियाँ) नीचे देखी हैं। इन पृथ्वी के भेदों के कारण, नारकजीव सात प्रकार के हैं। पहले नरक के नारकी, एक सागरोपम की आयुवाले हैं;... पहला नरक है, वहाँ एक सागरोपम का आयुष्य है। दूसरे नरक के नारकी, तीन सागरोपम की आयुवाले हैं; तीसरे नरक के नारकी, सात सागरोपम की आयुवाले हैं; चौथे नरक के नारकी, दस सागरोपम; पाँचवें नरक के सत्रह सागरोपम; छठवें नरक के बाईस सागरोपम और सातवें नरक के नारकी, तैंतीस सागरोपम की आयुवाले हैं। यह जीव का अधिकार है न ? पहले तो स्वरूप से तो कारणस्वरूप भगवान आत्मा है, ऐसा वर्णन किया। त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवस्वभाव, वह कारण प्रभु, उसका आश्रय करने से धर्म होता है, ऐसा पहले कहा। उसमें से कार्यपरमात्मा प्रगट हो। वह पूर्ण उसके फलरूप से आनन्द की पूर्ण दशा को अनुभवते हैं। ऐसा वर्णन करके फिर यह जीव के अधिकार लिये।

अब, विस्तार के भय के कारण संक्षेप से कहने में, तिर्यचों के चौदह भेद हैं... पशु। एकेन्द्रिय से लेकर। (१-२) सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (३-४) बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (५-६) द्वीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (७-८) त्रीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (९-१०) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (११-१२) असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, (१३-१४) संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त। चौदह भेद हैं, लो।

देवों के चार निकाय (समूह) हैं - (१) भवनवासी,... नीचे हैं। (२) व्यंतर, (३) ज्योतिष्क, और (४) कल्पवासी। ...हैं। देखो! ये ज्योतिष के देव हैं, ऐसा कहा है।

इन चार गति के जीवों के भेदों के भेद, लोकविभाग नामक परमागम में देख लें। लोकविभाग नाम का शास्त्र है, उसमें से देखना। यहाँ (इस परमागम में) आत्मस्वरूप के निरूपण में अन्तराय का हेतु होगा;... यहाँ तो आत्मस्वरूप की व्याख्या है। इसीलिए विस्तार करने जाएँ, वहाँ अन्तराय होगा। इसलिए सूत्रकर्ता पूर्वाचार्यमहाराज ने (वे विशेष भेद) नहीं कहे हैं। उनका बहुत विस्तार नहीं किया है।



 श्लोक-२८

[अब, इन दो गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, दो श्लोक कहते हैं-]

(मंदाक्रांता)

स्वर्गे वास्मिन्मनुज-भुवने खेचरेन्द्रस्य दैवा-
ज्योतिर्लोके फणपतिपुरे नारकाणां निवासे ।
अन्यस्मिन् वा जिनपतिभवने कर्मणां नोऽस्तु सूतिः,
भूयो भूयो भवतु भवतः पाद-पङ्केज-भक्तिः ॥२८॥

(वीरछन्द)

दैवयोग से हे प्रभु! यदि मैं पाऊँ स्वर्ग, नरक, नर-लोक ।
विद्याधर, नागेन्द्र नगर हो या फिर होवे ज्योतिष-लोक ॥
जिनपति के भवनों में अथवा अन्य कोई भी हो स्थान ।
किन्तु न हो कर्मोद्भव, होवे पुनः पुनः तव भक्ति महान ॥२८ ॥

श्लोकार्थ :—(हे जिनेन्द्र!) दैवयोग से मैं स्वर्ग में होऊँ, इस मनुष्यलोक में होऊँ, विद्याधर के स्थान में होऊँ, ज्योतिष्क देवों के लोक में होऊँ, नागेन्द्र के नगर में होऊँ, नारकों के निवास में होऊँ, जिनपति के भवन में होऊँ या अन्य चाहे जिस स्थान पर होऊँ, (परन्तु) मुझे कर्म का उद्भव न हो; पुनः पुनः आपके पादपङ्कज की भक्ति हो ॥२८ ॥

श्लोक-२८ पर प्रवचन

स्वर्गे वास्मिन्मनुज-भुवने खेचरेन्द्रस्य दैवा-
ज्योतिर्लोके फणपतिपुरे नारकाणां निवासे ।
अन्यस्मिन् वा जिनपतिभवने कर्मणां नोऽस्तु सूतिः,
भूयो भूयो भवतु भवतः पाद-पङ्केज-भक्तिः ॥२८॥

(हे जिनेन्द्र!) दैवयोग से मैं स्वर्ग में होऊँ, ... आहा..हा.. ! पुण्य के कारण मैं स्वर्ग में होऊँ। मुनि हैं, वे स्वर्ग में ही जाएँगे; इसलिए पहले स्वर्ग की बात ली है। पंचम काल के सच्चे सन्त-मुनि को केवलज्ञान नहीं हो सकता; इसलिए वे स्वर्ग में ही जाते हैं। सच्चे, हों! खोटे तो चाहे जिस व्यन्तर आदि में (जाते हैं)। सच्चे आत्मज्ञानी, ध्यानी, जिन्हें क्षण और पल में छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान आता हो, जिनकी निद्रा पौण सेकेण्ड के अन्दर ही हो, ऐसे मुनि दैवयोग से ऐसे पुण्य के कारण, हे नाथ! मैं स्वर्ग में होऊँ, इस मनुष्यलोक में होऊँ, ... वहाँ से मनुष्यरूप से भी आऊँ, क्योंकि दूसरा कुछ उपाय नहीं है, विद्याधर के स्थान में होऊँ, ... विद्याधर की भूमिकायें हैं, वहाँ कदाचित् जन्म हो, ज्योतिष्क देवों के लोक में होऊँ, ... कदाचित् ज्योतिष में होऊँ। सब साधारण बात की। नागेन्द्र के नगर में होऊँ, ... प्रवचनसार में विभाव लिया है न! मुनि कोई भवनपति आदि में भी उत्पन्न होते हैं। विराधक हो जाए तो वहाँ जाते हैं।

नागेन्द्र के नगर में होऊँ, नारकों के निवास में होऊँ, ... कदाचित् कोई भव सम्यग्दर्शन का हुआ और आयुष्य बँध गया हो। जैसे श्रेणिक राजा। आत्मभान था, पहले नरक का आयुष्य बँध गया। नारकी में गये। पहले नरक में (गये)। जिनपति के भवन में होऊँ... लो! शाश्वत् जिनमन्दिर है न! उनमें कदाचित् मैं होऊँ। या अन्य चाहे जिस स्थान पर होऊँ, (परन्तु) मुझे कर्म का उद्भव न हो; ... बस, यह एक बात। मैं तो आत्मा के ध्यान में रहूँ और कर्म की उत्पत्ति न हो, यह मेरी भावना है। कहो, समझ में आया? इसका अर्थ यह कि सम्यग्दर्शन में मैं रहूँ। राग, शरीर और कर्म से रहित मेरा भगवान परमात्मस्वरूप ऐसा शुद्ध चैतन्य, उसके आनन्द में रहूँ। समझ में आया? इससे कर्म का उदय होगा नहीं। कर्म का उद्भव ही नहीं होगा। बन्धन ही नहीं। अबन्ध परिणामी आत्मा के भान के काल में उसे बन्धन है नहीं - ऐसा सिद्ध करते हैं। चाहे जहाँ होऊँ, परन्तु मैं तो मेरे आत्मा के भान में होऊँ; इससे मुझे कर्मबन्धन नहीं होगा। समझ में आया?

पुनः पुनः आपके पादपंकज की भक्ति हो। आहा..हा.. ! जिसे कर्म का उद्भव न हो, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, ऐसा कहना है। उसे तो आपके पादपंकज की भक्ति हो। जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ, परमात्मा, विकल्प उठे तो उनकी भक्ति हो, ऐसा कहते हैं। दो बातें स्थापित कीं। प्रभु! मैं चाहे जहाँ होऊँ, परन्तु मैं मेरे स्वभाव में होऊँ। क्षेत्र से चाहे जहाँ होऊँ,

परन्तु मेरा आनन्द, ज्ञानस्वभाव, ऐसा चैतन्यप्रभु, ऐसे भाव में मैं होऊँ, कि जिससे मुझे राग-द्वेष की उत्पत्ति ही न होवे और होवे तो भी वे पृथक् हैं; मेरे स्वभाव में हैं नहीं; और स्वभाव में न रह सकूँ, उस काल में, तो उस समय भगवान! आपके चरणकमल की भक्ति हो। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : भगवान की भक्ति करना, वह तो दोष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष भी आता है न! दोष तो है। दोष किसका ? आये बिना रहता नहीं। बीच में (साधकदशा में) आता है। दूसरे का राग न आकर ऐसा राग उसकी भूमिका में होता है - ऐसा बतलाते हैं। दोष भी आता है, आये बिना रहता नहीं। (न आवे) तो वीतराग हो जाए। शुभभाव तो आकुलता है, अग्नि है, भट्टी है, दुःख है, ज़हर है; परन्तु है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : किसी को न भी आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : न आवे, ऐसा रहता नहीं। थोड़े काल ही न आवे। एकदम न आवे, तो हो गया, मिथ्यादृष्टि हो जाए। थोड़ा काल... एकदम... तो उसे। पहले तो विकल्पभाव होता है न, भगवान ऐसे हैं, सर्वज्ञदेव ऐसे हैं। समझ में आया ? यहाँ तो लम्बे काल की बात है न ? मैं उसमें होऊँ... उसमें होऊँ... उसमें होऊँ... बाहर के संयोग क्षेत्र में होऊँ, स्वभाव के क्षेत्र से हटूँ नहीं, ऐसा कहते हैं। मेरे स्वभाव की भावना से हटूँ नहीं; इसलिए मुझे कर्मबन्धन उत्पन्न हो नहीं; और हो तो विकल्प ऐसा हो। ऐसा हो।

मुमुक्षु : हो, ऐसा नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हो। आपके पादपंकज की भक्ति हो। इसका अर्थ ही यह। ऐसा भाव हो। जब तक वीतरागता न हो, (तब तक) आप त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव जिनपति वीतराग के प्रति वीतरागस्वभाव के स्वामी, जिन्होंने अन्तर में स्थिर होकर सब समाहित कर दिया है; राग को उड़ा दिया है। ऐसे वीतरागपति, जिनपति वे मेरे पतिरूप से-स्वामीरूप से हो तो विकल्प में उनकी भक्ति हो, ऐसा कहते हैं। यह तो व्यवहार से सब कहा जाता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : आवे अवश्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे आवश्य। आवे अवश्य, ऐसा कहे। व्यवहारनय से ऐसा कहे कि भक्ति कर - ऐसा भी कहे, परन्तु वास्तव में तो (भक्ति का भाव) आता है, उसका जाननेवाला है, परन्तु उस काल में मेरा ज्ञान ही ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। कि स्वभाव की उत्पत्ति न हो और विभाव की होने पर भी उसे ज्ञान में मैं जानूँ, ऐसी ज्ञान की मेरी दशा हो उस काल में—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? कैसी जैनदर्शन की पद्धति है ! नय, नय का जाल ऐसा है। इन्द्रजाल कहा न ? उसमें उलझा जाए - ऐसा नहीं ? ऐसी अटपटी बात है कि उसे समझने के लिए गहरी दृष्टि चाहिए - ऐसा कहते हैं। इसमें उलझाने की बात नहीं है। कोई कहे कि शुभभाव जहर है; हमें हो, तब तो उसकी भावना हो गयी। परन्तु होता है, आता है, हो जाता है, तो उसे कहा कि प्रभु ! हो तो मुझे आपकी भक्ति हो। आपके पाद पंकज। पाद अर्थात् चरण, पंकज अर्थात् कमल। चरणकमल की भक्ति हो। अन्तर में वीतरागस्वभाव की भक्ति; बाहर में आप वीतराग के स्वभाव का विकल्प, बस !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों लेना। उस जयविराज में कुछ नहीं मिलता। कहो, समझ में आया ? श्वेताम्बर में आता है न वह ? मूल का ठिकाना नहीं होता और... पूरी बात (में) ही अन्तर है। क्या करना ? मूलमार्ग का अन्तर है। उनकी कथनी सब तत्त्व से विरुद्ध है। ऐसी बात है। यह तो जो कथन का मेल है, उसे मेल कराते हैं। उस जयविराज में सब मिथ्या है। उसकी तो कथनी अकेली व्यवहार की है। यहाँ तो भानसहित की बात है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! सूक्ष्म बात है, भाई !

कारण कि अभी मैं पंचम काल का मुनि हूँ, इसलिए कुछ भव तो है, ऐसा कहते हैं। इसलिए कहीं होऊँगा तो सही - ऐसा कहते हैं, तो उस जिनपति के भवन में भी होऊँ, ऐसा कहते हैं, कमजोरी है। मेरी जाति नहीं, परन्तु अन्दर आये बिना रहता नहीं। **पुनः पुनः आपके पादपंकज की भक्ति हो।** पाद अर्थात् चरण; पंकज अर्थात् कमल। चरणकमल की ही भक्ति हो। निश्चय में वीतरागस्वरूप कारणपरमात्मा की भक्ति और व्यवहार में वीतराग परमात्मा की भक्ति - ये दो बातें करते हैं।

मुमुक्षु : दोनों एक साथ में होती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों एक साथ होती है। आहा..हा.. ! कहो, समझ में आया ?

श्लोक-२९

(शार्दूलविक्रीडित)

नानानून-नराधिनाथ-विभवा-नाकर्ण्य चालोक्य च,
 त्वं क्लिश्नासि मुधात्र किं जडमते पुण्यार्जितास्ते ननु ।
 तच्छक्तिर्जिन-नाथ-पाद-कमल-द्वन्द्वार्चनायामियं,
 भक्तिस्ते यदि विद्यते बहुविधा भोगाः स्युरेते त्वयि ॥२९॥

(वीरछन्द)

विविध महावैभव नरेश के सुन-सुन कर अवलोकन कर ।
 हे जड़मति ! क्यों व्यर्थ प्राप्त करता तू क्लेश महादुखकर ॥
 वे मिलते हैं पुण्योदय से पुण्य मिले जिनपूजा से ।
 जिनचरणों की भक्ति तुम्हें यदि, बहुविधि भोग स्वयं होंगे ॥२९॥

श्लोकार्थ :—नराधिपतियों के अनेकविध महा-वैभवों को सुनकर तथा देखकर, हे जड़मति, तू यहाँ व्यर्थ ही क्लेश क्यों प्राप्त करता है! वे वैभव, सचमुच पुण्य से प्राप्त होते हैं। वह (पुण्योपार्जन की) शक्ति, जिननाथ के पादपद्मयुगल की पूजा में है। यदि तुझे उन जिनपादपद्मों की भक्ति हो, तो वे बहुविध भोग तुझे (अपने आप) होंगे ॥२९॥

श्लोक-२९ पर प्रवचन

दूसरा श्लोक । २९ ।

नानानून-नराधिनाथ-विभवा-नाकर्ण्य चालोक्य च,
 त्वं क्लिश्नासि मुधात्र किं जडमते पुण्यार्जितास्ते ननु ।
 तच्छक्तिर्जिन-नाथ-पाद-कमल-द्वन्द्वार्चनायामियं,
 भक्तिस्ते यदि विद्यते बहुविधा भोगाः स्युरेते त्वयि ॥२९॥

नराधिपतियों के अनेकविध महा-वैभवों को सुनकर तथा देखकर, हे जड़मति,...

बड़े राजा, अरबोंपति, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव की वृद्धि देखकर, मानो ठाठबाट हो। अरे! यह क्या है, कहते हैं। नराधिपतियों के अनेकविध महा-वैभवों को सुनकर... उनके बड़े वैभव सुनकर तथा देखकर,... कदाचित नजर से देखने में आवे, बड़े। आहा..हा..! चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव। परन्तु क्या है, भाई!

हे जड़मति, तू यहाँ व्यर्थ ही क्लेश क्यों प्राप्त करता है! उसे देखकर तुझे प्रमोद क्यों आता है? कहते हैं। आहा..हा..! यह वैभव! क्या है यह? यह तो धूल है, कहते हैं। आहा..हा..! यह तो तुझे तेरे आत्मा के स्वरूप के ध्यान में कमजोरी का विकल्प आयेगा तो उसके फलरूप से तो आ जायेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : आश्वासन देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्वासन नहीं। उसका ऐसा स्वरूप फलरूप से होता है। तू ऐसा देखकर ऐसी इच्छा क्यों करता है?

व्यर्थ ही क्लेश क्यों प्राप्त करता है! वे वैभव, सचमुच पुण्य से प्राप्त होते हैं। देखो! लो! अभी के वैभव तो सब धूल जैसे हैं। समझ में आया? वे तो महापुण्य के वैभव-वासुदेव, बलदेव, तीर्थकर। ओहो..हो..! इन्द्र (भी) जिन्हें ऐसे खम्मा-खम्मा करते हैं, तथापि वे तो उदास हैं। यह (वैभव) मेरा नहीं। मैं हूँ, वहाँ यह नहीं। समझ में आया? यहाँ तो सामग्री हो, उसे देखकर या सुनकर किसलिए विकल्प उठाता है? क्या है यह? वह चीज तो तुझे पुण्य से प्राप्त होती है।

वह (पुण्योपार्जन की) शक्ति, जिननाथ के पादपद्मयुगल की पूजा में है। भाषा कैसी है? देखो! ओहो..हो..! भगवान आत्मा वीतरागमूर्तिस्वरूप त्रिकाल ध्रुवस्वरूप वीतरागस्वरूप की जहाँ दृष्टि है, उसे जिननाथ के पादपद्मयुगल की पूजा... भगवान के चरणकमल युगल की पूजा में वह शक्ति है। कहते हैं कि तुझे भगवान की पूजा का विकल्प आवे, उसके फलरूप से तो तीर्थकरपना; बलदेव, वासुदेव तो ठीक। समझ में आया? चक्रवर्तीपना तो सहज ही आयेगा। समझ में आया? अमृत की फसल पके, वहाँ तो साथ में थोड़ा भूसा होता है। भूसा की आशा किसलिए करता है? - ऐसा कहते हैं। आशा किसलिए करता है? भाई! होगा; हो, वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। ऐसे.. खम्मा.. खम्मा.. खम्मा.. हाथियों का ठाठ चौरासी लाख, हिनहिनाते घोड़े, ऊपर हीरा-माणिक्य... क्या कहते

हैं उसे ? उसके शृंगार। हाथी के और घोड़े के (शृंगार)। एक चक्रवर्ती, बलदेव। तीर्थकर को तो—शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ (को तो) छह खण्ड का राज था। वह सब पुण्य का फल है। वह पुण्य का फल तो तुझे वीतराग भगवान के चरणकमल युगल की सेवा करने से सहज प्राप्त होगा, होगा। उसमें कुछ आदरनेयोग्य है नहीं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

जिननाथ के पादपद्मयुगल की.... पाद, पद्म अर्थात् कमल और युगल अर्थात् दो। भगवान के दो पादकमल की सेवा। आहा..हा.. ! अर्थात् कि परमात्मा के प्रति भक्ति का (भाव)। परमात्मा तो स्वयं ही है, जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान (हुए हैं), उसे सच्ची भक्ति है, उसे ऐसे पादकमल भगवान की भक्ति का विकल्प (आता है)। उसे तो सहज वह वस्तु तो आयेगी। कुछ माँगने जैसा नहीं है। जिसे विस्मयता, उसके वैभव की अधिकता है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

बहुत विशाल धूमधाम से विवाह होता हो और घोड़ा-हाथी... काँच का वह क्या कहलाता है ? बड़े काँच रखते हैं ? बत्तियाँ, फूलवाड़ी, काँच की फूलवाड़ी रखते हैं न ? दियाबत्ती और जगमग निकलता हो, ऐसे हजारों-लाखों लोग, घोड़े हिनहिनाते हों, हाथी आवे। आहा..हा.. ! उसमें वह वर घोड़े पर निकला हो और वे लोग... आहा..हा.. ! क्या है परन्तु ? सुन न ! वह सब पुण्य का-धूल का ठाठ है। तुझे तो जिनपति की भक्ति है तो ऐसे पुण्य सहज बन जाएँगे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

मुनि है न ! वे स्वर्ग में जायेंगे। बड़ी ऋद्धि (प्राप्त होनेवाली है)। आराधक हैं। उनकी ऋद्धि का क्या कहना ? वहाँ से निकलकर बड़े वैभवशाली राजा होंगे। समझ में आया ? पश्चात् (उसे) छोड़कर मुनि होकर मोक्ष जाएँगे, ऐसा कहते हैं। बीच में ऐसा आएगा, कहते हैं। हो, आहा..हा.. ! वह पुण्य उपार्जन की शक्ति तो... ऐसा पुण्य, हों ! अन्य पुण्य तो ठोठ विद्यार्थी जैसे हैं। यह तो तीर्थकरों के पुण्य देखो, बलदेव के पुण्य देखो, चक्रवर्ती के, जिनके पुण्य के सामने नहीं ऐसा दिखाव। वे तो कहते हैं कि वीतराग परमात्मा स्वयं निजानन्द प्रभु की जिसे भक्ति अर्थात् भजन, उनका भजन जगा है, उसे बाकी रही हुई दशा में त्रिलोकनाथ की भक्ति का विकल्प आता है। उसके फल में वह आयेगा। उसमें तुझे कुछ इच्छा करने योग्य नहीं है। जाननेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

यदि तुझे उन जिनपादपद्मों की भक्ति हो,.... देखा ! वीतराग त्रिलोकनाथ चैतन्य परमात्मा जिनेन्द्रदेव के अन्तर की भक्ति तो तुझे है। अब यदि ऐसी भक्ति का विकल्प हो, ऐसा कहते हैं। तो वे बहुविध भोग तुझे (अपने आप) होंगे। अपने आप आयेंगे। तुझे जलसा नहीं करना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : बनावटी जलसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जलसा करते हैं न ? पाँच वर्ष नौकरी को जाता हो, फिर जलसा करे। कुछ बड़ों को कहे, तुम ऐसा करना, इसकी शोभा कहलाये। पाँच वर्ष यहाँ रहा हूँ। पोपटभाई ! यह सब पापानुबन्धी पुण्यवाले। यह तो पुण्यानुबन्धी पुण्य। आत्मा के आनन्द के भान में, जहाँ राग का आदर नहीं... आहा..हा.. ! ऐसे राग में जो पुण्य बँध जाये, वह सहज अपने आप बाह्य सामग्री आ जाएगी। यह जानने के लिए बात है, हों ! सामग्री आवे तो ठीक, ऐसा यहाँ प्रश्न नहीं है। आहा..हा.. ! ठीक तो यह आत्मा भगवान, कारण प्रभु चैतन्य परमात्मा का आदर है और उसे देखकर वह पर्याय प्रगट हो—धर्मी को यह भावना होती है परन्तु बीच में ऐसा राग होवे तो उसके फलरूप से ऐसा आता है। उसे ज्ञेयरूप से जानने का ज्ञान ही उस प्रकार का खड़ा होगा। उस प्रकार के उसे ज्ञेय होंगे, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

गाथा-१८

कर्ता भोक्ता आदा पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारा ।

कम्मज-भावेणादा कर्ता भोक्ता दु णिच्छयदो ॥१८॥

कर्ता भोक्ता आत्मा पुद्गलकर्मणो भवति व्यवहारात् ।

कर्मज-भावेनात्मा कर्ता भोक्ता तु निश्चयतः ॥१८॥

कर्तृत्वभोक्तृत्वप्रकारकथनमिदम् । आसन्नगतानुपचरितासद्भूतव्यवहारनयाद् द्रव्यकर्मणां कर्ता तत्फलरूपाणां सुखदुःखानां भोक्ता च, आत्मा हि अशुद्धनिश्चयनयेन सकलमोहराग-द्वेषादिभावकर्मणां कर्ता भोक्ता च, अनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण नोकर्मणां कर्ता, उपचरिता-सद्भूतव्यवहारेण घटपटशकटादीनां कर्ता इत्यशुद्धजीवस्वरूपमुक्तम् ।

है जीव कर्ता-भोगता जड़कर्म का व्यवहार से ।

है कर्म-जन्य विभाव का कर्ता नियत नय द्वार से ॥१८ ॥

अन्वयार्थ :—[आत्मा] आत्मा, [पुद्गलकर्मणः] पुद्गलकर्म का [कर्ता-भोक्ता] कर्ता-भोक्ता, [व्यवहारात्] व्यवहार से [भवति] है [तु] और [आत्मा] आत्मा, [कर्मजभावेन] कर्मजनित भाव का [कर्ता-भोक्ता] कर्ता-भोक्ता, [निश्चयतः] (अशुद्ध) निश्चय से है ।

टीका :—यह, कर्तृत्व-भोक्तृत्व के प्रकार का कथन है ।

आत्मा, निकटवर्ती अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से, द्रव्यकर्म का कर्ता और उसके फलरूप सुख-दुःख का भोक्ता है; अशुद्धनिश्चयनय से, समस्त मोह-राग-द्वेषादि भावकर्म का कर्ता और भोक्ता है; अनुपचरित असद्भूतव्यवहार से, (देहादि) नोकर्म का कर्ता है; उपचरित असद्भूतव्यवहार से घट-पट-शकटादिक का (घड़ा, वस्त्र, छकड़ा इत्यादि का) कर्ता है । ऐसा अशुद्धजीव का स्वरूप कहा ।

गाथा-१८ पर प्रवचन

१८वीं गाथा ।

कत्ता भोक्ता आदा पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारा ।

कम्मज-भावेणादा कत्ता भोक्ता दु णिच्छयदो ॥१८॥

है जीव कर्ता-भोगता जड़कर्म का व्यवहार से ।

है कर्म-जन्य विभाव का कर्ता नियत नय द्वार से ॥१८ ॥

यह, कर्तृत्व-भोक्तृत्व के प्रकार का कथन है। आत्मा, निकटवर्ती अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से, द्रव्यकर्म का कर्ता और उसके फलरूप सुख-दुःख का भोक्ता है;... देखो! अब नय डाला। कहते हैं कि आत्मा निकट अर्थात् नजदीक का। वे कर्म नजदीक में हैं न? स्वक्षेत्र में हैं न? अपने क्षेत्र में हैं, वहाँ कर्म है, इसलिए निकटवर्ती है। अनुपचरित है, दूर नहीं यहाँ नजदीक है। अनुपचरित अर्थात् उपचार नहीं। यह तो अनुपचार यहाँ नजदीक सम्बन्ध है, परन्तु असद्भूत है। वह आत्मा की पर्याय में नहीं है।

असद्भूतव्यवहारनय... निमित्त है। व्यवहारनय से, द्रव्यकर्म का कर्ता... ऐसा कहा जाता है। वास्तव में उनका कर्ता नहीं है, परन्तु नजदीक में परमाणु का परिणमन है, उसमें निमित्तरूप अज्ञानी के राग-द्वेष हैं, इसलिए उसे व्यवहार से द्रव्यकर्म का कर्ता कहने में आया है।

मुमुक्षु : अनुपचरित।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुपचरित, नजदीक। उसे घर-मकान आदि उपचरित। यहाँ नजदीक है तो उपचरित। निकट उपचरित - नजदीक में उपचार नहीं, परन्तु उपचार सम्बन्ध है नजदीक में। ऐसे असद्भूतव्यवहारनय से-झूठी दृष्टि से जड़कर्म का कर्ता। उसके फलरूप सुख-दुःख... अर्थात् संयोग। कर्म का फल संयोग है। यह राजपाट, कुटुम्ब, निर्धनता, दरिद्रता, यह उसका फल, उसे भोगता है, वह भी उस प्रमाण है। भोगता नहीं परन्तु नजदीक में दरिद्रता, निर्धनता आदि होती है; सधनता और धनाढ्यपना ऐसा नजदीक में होता है, इसलिए उसका फल भोगता है, ऐसा कहना वह असद्भूतव्यवहारनय

से-झूठे नय से कहा जाता है। क्योंकि उसे वह भोग नहीं सकता; मात्र अपने राग-द्वेष के अनुभव के काल में वे चीजे निमित्तरूप हैं, इसलिए उन्हें भोगता है, ऐसा व्यवहार असद्भूत-झूठी दृष्टि से कहा जाता है। समझ में आया? इस शरीर को भोगता है, दाल-भात इत्यादि (भोगता है), यह कहना। उस काल में स्वयं को राग का जो अनुभव है, उस राग के अनुभव में, उन चीजों में निमित्तपना है; इसलिए उन्हें भोगता है, ऐसा झूठे नय से -व्यवहार से कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

एक बार कहा था न? बहुत वर्ष पहले की बात है। चारित्र आश्रम। ऐसा कि पुण्य किसे कहा जाता है? ऐसा प्रश्न किया था। कहा, पुण्य उसे कहा जाता है कि जो संयोग प्रयोग करे इतना। भोगे न वह? भोगे वह पुण्य नहीं, वह तो नया पाप है। उसे नहीं भोगता परन्तु उस ओर का झुकाव होकर राग आदि को भोगता है न? यह प्रश्न हुआ था (संवत्) १९८३ के वर्ष में। १७ और २७=४४ वर्ष पहले की बात है। यहाँ सोनगढ़ में चारित्र आश्रम है (उसमें) चारित्रविजय थे न? उन्होंने प्रश्न किया था। अभी थोड़े दिन पहले कहा था। ऐसा कि साधु को यह सब क्या? यह तो पुण्य हो, उसे भोगे। पुण्य को क्या भोगे? राग को भोगे, दुःख के भाव को (भोगे), तब उस पुण्य को भोगता है, ऐसा झूठे नय से कहने में आता है। उसके अस्तित्व में उसका भोगना आता नहीं। उस जड़ का भोगना, वह आत्मा की पर्याय के अस्तित्व में नहीं आता। वह तो बाहर दूर रहता है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ऐसा मान बैठा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मानता है। पागल तो चाहे जो माने। आत्मा की वर्तमान पर्याय की अस्ति में यह शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, वैभव का अनुभव इसकी पर्याय में आता नहीं। समझ में आया? द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है। वस्तु त्रिकाल द्रव्य-गुण में तो कुछ है नहीं, परन्तु वर्तमान पर्याय-अवस्था है, उसमें जड़ का अनुभव नहीं आता। अनुभव तो उसे राग-द्वेष का, हर्ष और शोक का होता है परन्तु उस हर्ष-शोक के अनुभव में वह चीज निमित्त पड़ी। निमित्त अर्थात् व्यवहार और इसमें (आत्मा में) नहीं है, इसलिए असद्भूत। असद्भूतव्यवहारनय से भोगता है, ऐसा कहने में आता है। कहो, पोपटभाई! आहा..हा..! छह लड़के बैठे (हों)। पूज्य पिताश्री, पूज्य माताश्री। कल पत्र आया था न? दो के नाम थे। तुम बैठे थे या नहीं? सब सुना था। उसे लगे कि आहा..हा..! परन्तु यह इसका भोगना नहीं है। उनके शब्द हैं, वे तो जड़ हैं। जड़ यहाँ स्पर्श नहीं करते। आत्मा

की दशा में वर्तमान पर्याय में उस जड़ का आना है ही नहीं। जड़ स्पर्श नहीं करता। स्पर्श किये बिना उसे किस प्रकार भोगना ?

मुमुक्षु :असर करे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल। असर क्या करे ? जड़, जड़ में अस्तित्व की मौजूदगी, आत्मा की पर्याय में, पर्याय के अस्तित्व की मौजूदगी। इसकी पर्याय में उसके अस्तित्व की नास्ति। क्या कहा ? राग और द्वेष का अनुभव, उसकी पर्याय में अस्ति और जड़ की पर्याय का अनुभव, इसमें नास्ति। उसका अनुभव कहाँ है ? वह वस्तु तो यहाँ है ही नहीं। मात्र अनुभव में निमित्तपना पड़ा। पृथक् वस्तु है, इसलिए असद्भूतव्यवहारनय से भोगता है, ऐसा कहने में आता है। ऐसी बात है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? यह जड़ की बात की। अब इसके विकार की बात करते हैं।

जड़ को भोगे, भोगा है परन्तु झूठे नय से, निमित्त देखकर, ऐसे कथन इसे ज्ञान करने के लिए है। आहा..हा.. ! किसे भोगे ? भगवान स्वयं अरूपी। अभी लड़के पूछते थे, आत्मा अरूपी कैसे होगा ? उसे रस, गन्ध, स्पर्श कहाँ है उसमें ? वह तो रंग, गन्ध, स्पर्श का तो पृथक् रहकर जाननेवाला है। रंग, गन्ध, स्पर्श को छूकर जाननेवाला है ?

मुमुक्षु : यह सब कौन विचार करे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़के साढ़े सात बजे जाते हैं न वे लोग ? जल्दी आये थे। एक व्यक्ति ने पूछा कि यह अरूपी आत्मा कैसे कहा ?

अरूपी (कहा क्योंकि) उसे रंग, गन्ध, स्पर्श कहाँ है ? उसमें रंग, गन्ध, स्पर्श है ? रंग, गन्ध, स्पर्श का अस्तित्व तो जड़ में है। इसके अस्तित्व में वे नहीं, इसलिए यह अरूपी है। समझ में आया ? बात सुनते हुए लोगों को प्रश्न तो उठे न।

आत्मा के अस्तित्व में तीन प्रकार : एक द्रव्य का अस्तित्व, गुण का अस्तित्व, पर्याय का अस्तित्व। अब पर्याय में भी एक शुद्ध और अशुद्ध दो का अस्तित्व, बस। इसके अतिरिक्त उसमें दूसरा अस्तित्व नहीं है। बराबर है ? उसके अस्तित्व में, उसके क्षेत्र में, उसके भाव में वह द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् शक्तियाँ और वर्तमान दशा है। उस दशा के दो प्रकार, एक शुद्ध और एक अशुद्ध। इतना अस्तित्व उसमें है, बस। इतना अस्तित्व उसमें है। अब उसमें यह दाल, भात, रोटी, स्त्री, कुटुम्ब, शरीर इसके अस्तित्व में वह है

ही नहीं। समझ में आया ? इसकी सत्ता में वह सत्ता है नहीं, तथापि उस सत्ता का अनुभव करता है—ऐसा कहना, वह असद्भूतव्यवहारनय के कथन हैं। झूठे नय के (कथन हैं)। ज्ञान कराने के लिए (कहा) कि यह निमित्त ऐसा है। आहा..हा..! समझ में आया ?

भूख वास्तव में लगी हो ऐसे। भूख वह तो जड़ को होती है। जठराग्नि जड़ की दशा है। वह आत्मा को स्पर्श करती है ? उसमें और शरीर निरोगी हो तथा झरते हुए घी का गर्म हलुवा आया हो। सफेद गेहूँ का। सफेद गेहूँ का। कुछ आवश्यकता न हो। फटफट उठे अन्दर। मानो मैं कुछ खाता हूँ परन्तु क्या खाता है तू ? सुन न ! आहा..हा.. ! तुझे तो यह दिखायी देता है कि यह है। यह मुझमें है, ऐसा नहीं और उसमें मैं हूँ, ऐसा भी नहीं। यह है, ऐसा दिखायी देता है, इतना; और वह क्रिया होती है, वह दिखायी देती है, परन्तु वह क्रिया किसमें ? पर में होती है; तुझमें है नहीं। इसलिए उसे जड़ का भोगना कहना, स्त्री के शरीर का भोगना कहना, ये सब दाल, भात और मौसम्बी का जूस पीते हैं, उसका ठण्डा अनुभव होता है, ऐसा कहना, वह सब असद्भूत-झूठे नय का कथन है। कहो, समझ में आया ?

भगवान जड़ को कैसे स्पर्श करे और भगवान जड़ में कैसे आवे ? जहाँ रहा है, वह पर में कैसे जाये और पर जहाँ रहा है, वह आत्मा में कैसे आये ? समझ में आया ? आहा..हा.. ! इसलिए जड़ का भोग, ऐसा अनुपचार नजदीक में परमाणु हैं, इसलिए उन्हें असद्भूत अनुपचरित गिनकर कर्ता और भोक्ता दोनों व्यवहारनय से कहा है।

अशुद्धनिश्चयनय से, समस्त मोह-राग-द्वेषादि भावकर्म का कर्ता... लो, अशुद्धनिश्चयनय से,... इसकी पर्याय में मिथ्या राग-द्वेष का भावकर्म का कर्ता। यह अज्ञानभाव की बात है। समझ में आया ? कर्म इसे मिथ्यात्व कराता है, ऐसा इनकार करते हैं, देखो ! कर्म के कारण मिथ्यात्व और राग-द्वेष जीव करता है, ऐसा नहीं है। अशुद्धनिश्चयनय से। शुद्धनिश्चय की दृष्टि में तो कर्म करना, भोगना है नहीं। शुद्धनिश्चयदृष्टि में तो राग का कर्ता, भोगना है ही नहीं। अशुद्धनिश्चय की दृष्टिवाला अर्थात् मिथ्यादृष्टि... आहा..हा.. ! **समस्त मोह-राग-द्वेषादि भावकर्म...** मिथ्यात्व और पुण्य के, पाप के भाव, राग-द्वेष का परिणमन करे। करता हो, उस जड़रूप से तो यह परिणमन नहीं करता, इसलिए कर्ता नहीं है परन्तु यह तो परिणमन करता है, इसलिए कर्ता है। समझ में आया ? यह क्या कहा ? जड़कर्मरूप से आत्मा परिणमन नहीं करता और जड़ के फलरूप से भी आत्मा परिणमन नहीं करता, इसलिए उसे व्यवहार असद्भूत झूठे नय से कर्ता और भोक्ता कहा है। यह तो

परिणमता है। अशुद्धनिश्चयनय से, समस्त मोह-राग-द्वेषादि भावकर्म का कर्ता... परिणमन करता है। परिणमन करता है, इसलिए कर्ता कहने में आता है। समझ में आया ? आहा..हा.. !

अशुद्धनिश्चयनय से, समस्त मोह-राग-द्वेषादि भावकर्म का कर्ता और भोक्ता है;... दोनों लेना। है न ? क्योंकि जीव राग-द्वेष को भोगनेरूप परिणमता है। कहीं स्त्री और दाल, भात, शाक भोगनेरूप परिणमता नहीं। परिणमता नहीं, इसलिए झूठा नय है। इन रूप तो (राग-द्वेषरूप तो) परिणमता है। आहा..हा.. ! राग-द्वेष, पुण्य और पाप आदि भाव, विकल्प की वृत्ति का भाव, उस रूप परिणमता है; अर्थात् अवस्था में होता है, इसके अस्तित्व में होता है, इसलिए अशुद्धनिश्चयनय से इसके परिणाम का कर्ता कहना और इसके परिणाम में हर्ष-शोक होते हैं, हर्ष-शोक से परिणमता है, हर्ष-शोक को अनुभव करता है। इसके अस्तित्व में अनुभव करता है। पर्याय के अस्तित्व में अनुभव करता है। पर के अनुभव के अस्तित्व में यह कुछ नहीं आता। समझ में आया ?

भोक्ता है;... लो। यहाँ समुच्चय बात करनी है। ज्ञानी भोक्ता है कैसे, यह प्रश्न यहाँ नहीं है। ऐसे जीव आत्मा के भान बिना, जड़कर्म के परिणमने के काल में अपने अशुद्धभाव का परिणमन है, इसलिए उसका कर्ता इसे कहा जाता है। और इसमें यह परिणाम निमित्त होकर बन्ध पड़ा, उसे निमित्त हुए। समझ में आया ? इसलिए जड़ का कर्ता व्यवहार से कहने में आया है। पाठ में ऐसा है। 'कर्मजभावेन' ऐसा है न ? कर्मजनित भाव। इसका अर्थ यह कि आत्मस्वभावभाव यह नहीं है परन्तु वहाँ से कोई ऐसा ले लेवे कि यह तो कर्म के कारण हुए भाव हैं। ऐसा नहीं है। कर्म जिसमें निमित्त हैं और उपादान से अपने में हुआ है। पाठ है न ? मूल पाठ है। 'कर्मजभावेन' कर्म से उत्पन्न हुए भाव का। आनन्द और सम्यग्दर्शन, वह कहीं कर्म से नहीं (हुए हैं), वे तो आत्मा से उत्पन्न हुए हैं। उनका अनुभव करनेवाला धर्मी शुद्धनिश्चय में है। समझ में आया ?

धर्म की पर्याय का करनेवाला धर्मरूप परिणमता है, निश्चय से अपने परिणाम का-निर्मल का कर्ता है और निर्मल का भोक्ता है। यह तो इसके अस्तित्व में है। यह अशुद्धरूप परिणमता है। भगवान स्वयं अपना शुद्धभाव, आनन्दस्वभाव भूलकर पर के निमित्त का लक्ष्य करके मिथ्याभ्रान्ति खड़ी करे कि यह मुझे ठीक पड़ता है और राग-द्वेष

खड़े करे, वह अशुद्धनिश्चय से कर्मजनित भाव कहे जाते हैं। आत्मजनित नहीं। उनका अशुद्धनिश्चय से अज्ञानी कर्ता है। समझ में आया? अशुद्धनिश्चय से भोक्ता है।

अब निकटवर्ती अनुपचरित असद्भूत... लिया था, उसके साथ अब अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से,... शरीर लिया यह। यह निकटवर्ती नहीं लिया क्योंकि कर्म तो ऐसे के ऐसे सदा साथ के साथ ही हैं। शरीर तो जाये और आये। इसलिए उसे निकटवर्ती न गिनकर अनुपचरित असद्भूत... नजदीक है, इसलिए अनुपचरित निकटवर्ती नहीं। कायम साथ में नहीं रहा। अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से,... आहा..हा..! कितना याद रखना इसमें? यह तो न्याय का प्रश्न है। यह कहीं याद रखने की वस्तु नहीं है। जो कर्म के रजकण हैं, वे अत्यन्त निकटवर्ती कायम रहे हैं, इसलिए उन्हें निकटवर्ती अनुपचरित—उपचाररहित झूठे नय की बात कही। यह भी उपचाररहित असद्भूत शरीर, निकटवर्ती नहीं परन्तु बारम्बार नया-नया आया करता है। ऐसे अनुपचरित असद्भूतव्यवहार से, (देहादि) नोकर्म का कर्ता है;... लो। है नहीं, हों! परन्तु कर्ता किसलिए कहा? कि आत्मा स्वयं विकारीभाव का कर्ता हो, उसमें यह विकारी परिणाम देहादि को निमित्त होते हैं, इसलिए इसे व्यवहार से कर्ता कहने में आता है। आहा..हा..! गजब!

देहादि अर्थात् वाणी, मन, शरीर, नोकर्म, इन सबका-नजदीक का कर्ता कहना, वह अनुपचार असद्भूतव्यवहार से (कथन है)। वह अनुपचार और निश्चय दो एक गिने हैं एक जगह। आया था न? जैनतत्त्व मीमांसा में। अनुपचार अभेदनय से। वह अलग अनुपचार है। भाई! आया था न उसमें? अनुपचार अर्थात् अभेद नहीं, ऐसा आया था। उपचार नहीं, ऐसा। उपचार तो भेदनय व्यवहार से। वह यहाँ नहीं। यहाँ तो नजदीक में कायम रहनेवाले ये कर्म। नजदीक में नहीं परन्तु बारम्बार रहनेवाले सही, वह शरीर। ऐसा, इसलिए उसे अनुपचार कहने में आया है। यह अनुपचार अर्थात् अनुपचार अभेद निश्चय वह यह नहीं। जैनतत्त्व मीमांसा में आया। समझ में आया? देखो! यह कर्ता है, कहा है। कहते हैं, लो। कत्ता भोक्ता आदा पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारा। व्यवहार से कर्ता है। परन्तु व्यवहार से कर्ता अर्थात् क्या?

मुमुक्षु : यह व्यवहार हो, तब ही भगवान ने कहा होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, व्यवहार अर्थात्? कि आत्मा विकार करे, उसमें उस चीज

का निमित्तपना देखकर अथवा उस चीज़ में इस परिणाम का निमित्त देखकर व्यवहार से कर्ता, ऐसा कथन करने में आता है। है नहीं और कहना, वह व्यवहार है।

मुमुक्षु : कर्ता का अर्थ समझाने के लिये बहुत लम्बी बात की।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो, भीखाभाई! स्वयं अपने विकारी भाव को करे और भोगे परिणमकर, वह परिणाम उसे निमित्त कहने में आता है। निश्चय अपना, उसको निमित्त; इसलिए वह असद्भूतव्यवहारनय से। है नहीं कर्ता, नहीं भोक्ता, अपने अस्तित्व में, तथापि कहने का नाम व्यवहार है। आहा..हा..! झगड़ा... झगड़ा... झगड़ा... झगड़ा...। झगड़ा मिटाने के मार्ग में झगड़ा खड़ा किया। उपचरित असद्भूतव्यवहार से घट-पट-शकटादिक का (घड़ा, वस्त्र, छकड़ा इत्यादि का) कर्ता.... उपचार से-झूठे नय से घड़े को कहे, पट को करे, शकट (गाड़ी) को करे। यह तो चलावे तो है तो राग, इसलिए स्वयं राग को चलाता है परन्तु राग इसे निमित्त होता है, इसलिए उसका कर्ता यह व्यवहार से कहा जाता है। वास्तव में बिल्कुल कर्ता-भोक्ता नहीं है, तब तो व्यवहार कहा। उसरूप परिणमता है ? कर्ता नहीं है, इसलिए उसे उपचार लागू पड़ता है। परिणमता है उसरूप ? घटरूप परिणमता है ? बस, परिणमता नहीं, इसलिए उसकी परिणमने की पर्याय को निमित्त होता है, इसलिए व्यवहार से कर्ता कहा जाता है, बस।

मुमुक्षु : परिणममें तो घटरूप हो जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ हो जाए। घटपने का आया है, अपने (समयसार की) १००वीं गाथा में नहीं आया ? अज्ञानी के योग और उपयोग, उसकी पर्याय घट-पट के परिणमन के कार्यकाल में अज्ञानी के योग-उपयोग निमित्त हैं। समझ में आया ? समयसार की १००वीं गाथा में आया है। घट-पट, गाड़ी, शाक, दाल, भात, मकान आदि का कार्यकाल होने के समय में। है तो उनका कार्यकाल। समझ में आया ? उस समय निमित्त किसे कहना ? कि योग और राग की कर्ताबुद्धि जिसकी पर्यायबुद्धि है, उसकी पर्याय उनके साथ निमित्तरूप कहने में आती है। पर्याय को और उन्हें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। द्रव्य-गुण को सम्बन्ध नहीं है परन्तु किस पर्याय को ? विकारी पर्याय का कर्ता होता है, वह भिन्न पड़ा नहीं, ऐसी विकारी पर्याय का कर्ता विकार से भिन्न पड़ा नहीं, ऐसी विकारी पर्याय का कर्ता जीव उस कार्यकाल में उसका विकारीपन निमित्त होता है। कहो,

पण्डितजी ! यह कहाँ याद रखना ? भाई ! विपरीतता बहुत घुस गयी है, उसे उतने प्रमाण में वापस सुलटा समझना पड़ेगा या नहीं ? समझ में आया ?

उपचरित झूठे नय से... उपचार है न ?यहाँ तो कहते हैं । घट-पट, गाड़ी, दुकान का कर्ता कहना, वह तो उपचार आरोपित झूठे नय से कथन है । ऐसे नय इसमें उतारे हैं । पण्डितजी ! आहा..हा.. ! इत्यादि का कर्ता होता है ।

ऐसा अशुद्धजीव का स्वरूप कहा । देखो, लो । यह तो अशुद्धजीव स्वरूप का कथन है । अशुद्धरूप परिणमता है । जो इसका स्वभाव नहीं, ऐसे अशुद्धरूप परिणमता है । उसके लिए ये दो बोल लागू पड़ते हैं । निश्चय से विकार का कर्ता और भोक्ता; निकटवर्ती अनुपचरित कर्म का कर्ता और भोक्ता, अनुपचार से देहादि का कर्ता, उपचार से घट-पट आदि का कर्ता । ऐसे निमित्तपने के इतने अन्तर से ऐसा कहने में आता है । यह अशुद्धजीव का स्वरूप कहा, लो ! फिर इसका श्लोक कहेंगे । (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)